मथुरादास की डायरी • मुद्राराक्षस

जगतराम एण्ड सन्स
मेन बाजार, गांधी नगर, दिल्ली-110031

© मुद्राराक्षस

प्रकाशक

जगतराम एण्ड संस
IX/221, मेन बाजार, गांधीनगर
दिल्ली-110031

प्रथम संस्करण

1992

मूल्य

पचास रुपये

मुद्रक

अजय प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

MATHURADAS KI DIARY (Humour & Stire)
by Mudrarakshas
Price : Rs. 50.00

अनुक्रम

परनिंदा सुख उर्फ एरिस्ट्रोक्रेट झाड़ू	7
पुरस्कार प्रसंग	10
सावधान ! आगे जनवादी रेजोमेंट है	14
अध्यक्षता का आनन्द	19
अथ श्री दिल्ली पुलिस पुराणम्	23
काशी विश्वनाथ : शासकीय नियमावली	27
विधायक बिकाऊ हैं···!	32
आलोचना के खतरे	37
ऋणंकृत्वा चर्बी पिवेत	41
पड़ता सिद्धान्त	46
चुनाव चक्र और एकता	51
उत्तर प्रदेश का कीर्तिमान	55
व्यंग्यकार की मेख	59
गरीबी की रेखा के इधर और उधर	64
समीक्षा सुख	68
टेढ़ा उल्लू	72
बड़ा क्या है : सच्चा सुख या सत्ता सुख	77
हिन्दी की शुभचिन्तक	82
ब्लैड युग की साहित्यिक हरकतें	87
बड़े बनने का गुर !	91
भारत भवन से मथुरादास की अपील	96
कम्प्यूटर क्रान्ति	101
उपदेशक की जमीन	105

उत्तर प्रदेश में यह कला और ज्यादा विकसित हो सकती है यानी इमारत वहाँ न बाहर से दिखे न अन्दर से। सिर्फ उसका अध्यक्ष दिखे।

तो मन्त्रीजी लुटे। यात्रा करते समय लुटे। मगर आप नैतिक सदाचार पर आवश्यक ध्यान दीजिए। उस वक्त वे न तो पिये हुए थे न ही किसी परिचारिका को छेड़ रहे थे। एकाग्रचित होकर यात्रा कर रहे थे।

डकैतों ने सोचा होगा कि मन्त्री हैं, साथ में बहुत पैसा होगा। गाँवों में डकैत आते हैं तो गोलियाँ दागते हुए सीधे साहूकार धन्नूसाह के घर पहुँचते हैं। उन्हें मालूम है कि धन्नूसाह ने गाँव-भर का सोना-चाँदी गिरवी रख छोड़ा है।

डकैत निधड़क धन्नूसाह के घर घुस जाते हैं और प्रसन्न होकर लौटते हैं। क्या उन्होंने मन्त्रीजी को भी माल गिरवी रखनेवाला धन्नू समझा था?

मथुरादास का दावा है कि सारी गड़बड़ी की जड़ प्रथम श्रेणी की बोगी है। डकैत समझते होंगे कि पहले दर्जे में बहुत धनी लोग चलते हैं। डकैतों को पता होना चाहिए कि पहले दर्जे में ज्यादातर वे लोग चलते हैं जिनकी औकात खुद पहले दर्जे का टिकट लेने की कभी नहीं होती। उसमें वे लोग चलते हैं जिनका टिकट सरकार देती है या रेलवे बोर्ड। कभी-कभी उसमें कोई ऐसा बुद्धिजीवी भी चलता है जो सम्मेलन के आयोजनों को तीन प्रथम श्रेणी के किराये देने के लिए पटा चुका होता है। आप कहेंगे यह प्रथम श्रेणी के तीन किराये क्या हुए? बताता हूँ। एक जाने का, एक वापसी का और एक टिकट का पैसा रास्ते में चाय पीकर बीवी के लिए साड़ी लाने का।

खैर, तो बात चल रही थी ट्रेन में मन्त्रीजी के लुटने की। मन्त्रीजी को डकैत ने लूट लिया, यह समाचार बना क्यों? मथुरादास ने पत्रकारिता की किताब में पढ़ा था कि यदि कुत्ता आदमी को काटे, यह खबर नहीं बनती। खबर तब होती है जब आदमी कुत्ते को काटे। अब पत्रकार आखिर इसे खबर बनाकर कहना क्या चाहते थे कि डकैतों ने मन्त्री को लूटा!

व्यंग्यकार की मेख

मथुरादास इधर बहुत ही परेशान हैं। परसाई ने जो घिसना शुरू किया वह चन्दन बताया गया था पर बाद में मालूम हुआ वे सिर्फ लेखकों को घिस रहे हैं···और लेखकों में भी उन्हें हाथ लगे 'अश्क' जिनको घिसने पर न खुशबू निकलती है न जिन। सिर्फ 'ग्रीबी' बाहर आती है जो अश्क और परसाई दोनों की ही होती है।

एक जमाने में महादेवी वर्मा ने डेढ़ लाख का इनाम लेते हुए कहा था कि वे एक भी लेखक के आँसू पोंछ सकीं तो सौभाग्य होगा। हम सबके आँसू उपेन्द्रनाथ अश्क हैं। वे उन्हें पोंछ दें तो बड़ा उपकार होगा। हालाँकि मुझे यह भी यकीन है कि···खैर छोड़िए।

हमें चिन्ता इस बात की हुई कि परसाई ने जब भंडा फोड़ा तो मालूम हुआ कि वह सिर्फ साहित्यकारों का था। रेडियो में एक चिरंजीत हैं। झलकियाँ लिखते हैं। वे नाराज होते हैं तो क्लर्क को गाली देते हैं, अफसर को नहीं। मिनिस्टर को तो भूलकर भी नहीं। बल्कि कभी-कभी तो ऐसा होता है कि सुधाकर पाण्डे को छोड़ बाकी हर कोई उन्हें क्लर्क ही लगने लगता है। परसाई साहित्य के चिरंजीत हो गए हैं। हास्य के कुछ पुरस्कार दोनों में बँटे और बराबर उत्साह से बँटे। परसाई ने भी इसीलिए अपना क्लर्क खोज लिया लेखक। हर लेखक भ्रष्ट है। इधर तो वह रचना का दंभ ओढ़ता है उधर पुरस्कार और किताबों की बिक्री के लिए मन्त्रियों के चक्कर लगाता है। कितना विराट भ्रष्टाचार है। परसाई को जरूर इसका भंडाफोड़ करना चाहिए।

मन्त्री मध्यप्रदेश से नेपाल की यात्रा करता हुआ अफीम या हशिश ले आए तो जायज है। बम्बई के तस्कर और कालाबाजारिए पुरस्कार स्वयं दे दें तो जायज है। उद्योगपति और शासन का आदमी मिलकर दस-बीस करोड़

डकार जाय वह चिन्ता की बात नहीं है। उद्योगपति उचित शुल्क देकर खाने के तेल में मोबिल आयल मिलाकर बेचने के लिए मन्त्री से मिले, बड़े-बड़े मगरमच्छों को लड़कियाँ भेंट करें, वह छोटा पाप है। बड़ा पाप है मेहनत से किताब लिखो। प्रकाशक रायल्टी न दें, परसाई जूता चला दें और सिर्फ दो-चार सौ प्रतियाँ खरीदवाने के लिए लेखक खुद मन्त्री से मिले तो घोर पाप लगता है। रौरव नरक मिलेगा ससुरे को। पुराना फर्नीचर नया बनाकर या प्राणरक्षक दवा में गोबर मिलाकर बेचने के लिए व्यवसायी मन्त्री से मिले तो जायज है, लेखक किताब के हजार-पाँच सौ पाने के लिए मन्त्री से मिले तो नारकीय है। यह अद्‌भुत लीला देखी मथुरादास ने कलिकाल की।

मथुरादास ने इधर निश्चय कर लिया। हम भी नियमित व्यंग्यकार हो गए हैं। हम भी अब अपने को छोड़कर बाकी हर लेखक को कमीनगी का पुतला समझेंगे। बशर्ते कि वह कहीं अफसर, सम्पादक, विभाग का अध्यक्ष, मुख्यमन्त्री या प्रकाशक का सलाहकार न हो।

इधर व्यंग्यकार की खपत बढ़ रही है। बाजार-भाव ऊँचा हो रहा है। माँग ज्यादा है माल कम है। इसलिए व्यंग्य-लेखन बहुत मुश्किल काम है और यह कुछ लोगों द्वारा ही कर सका जाने वाला गूढ़ और गुह्य ज्ञान से लबालब काम है। नये-से-नये अखबार निकल रहे हैं और हर एक को अपनी-अपनी इमारत के माथे पर टाँगने को एक भुतही हाँडी की जरूरत है। हाँडी तो महँगी होगी ही। हाँडी बनाने वाला भी महँगा होगा। माल की खपत ज्यादा है इसलिए यह भी हो सकता है कि चन्दन के बजाय मैं पत्थर घिस दूँ या घिसने और तिलक बनाकर माथे तक पहुँचाने के बजाय सीधे खोपड़े पर दे मारूँ। और काम बढ़ जाए तो मैं बीमार भी पड़ सकता हूँ। बीमारी की हालत में पारिश्रमिक के साथ-साथ इनाम भी मिल सकता है। ज्यादा सफलतापूर्वक बीमारी पाल सका तो मुख्यमन्त्री के साहित्य-प्रेमी होने की परीक्षा भी ले सकता हूँ।

यह बता दूँ भाई साहब, व्यंग्य लिखना बहुत टेढ़ा काम होता है। इसके लिए सबसे ज्यादा ज़रूरी तो यह होता है कि व्यंग्य, व्यंग्य जैसा दिखे। अगर देखने वाला उसे वैसा देखने से आनाकानी करे तो उसे ठीक कर दिया जाए।

दूसरी बड़ी बात यह है कि व्यंग्य लिखना छुरे की धार पर नाचना होता है। बल्कि ऐसी दीवार की सवारी गाँठना होता है जिसके दोनों ओर टाँगें लटकाई जा सकें। इससे व्यंग्यकार निष्पक्ष दिखता है। फिर यह भी देखना होता है कि अगर आदमी मतलब का है तो उसे सशर्त समर्थन दे दिया जाए। यानी दोनों टाँगें उसी की तरफ कर दी जाएँ और आदमी बेमतलब है तो बेवजह पिट सकता है। ऐसे पिटना ही उसकी नियति होगी।

किसी जमाने में बड़े भोंदू किस्म के व्यंग्य लिखे जाते थे। यानी वे व्यंग्य जिस पर किये जाते थे वह भी मजे लेने लगता था। यह तो मामला फिल्मी हो गया कि नायिका ने नायक को थप्पड़ मारा और नायक गाने लगा। व्यंग्य है तो उसे ठीक किस्म का मजबूत थप्पड़ होना चाहिए और पिटने वाले को व्यंग्य पढ़ने के बाद सबसे पहले सेंक की तैयारी करनी चाहिए।

भोंदू व्यंग्यकार व्यंग्य तो कर डालते थे। यह पता नहीं चलता था कि वे हैं किसकी तरफ। व्यवस्था बदले इसकी तरफ तो ध्यान ही नहीं देते थे। हम सब इन्तजाम पक्का रखेंगे। हम अर्जुनसिंह की तरफ होंगे और दूसरी तरफ वाले हर किसी को दुर्योधन सिंह मानेंगे। वैसे दूसरी शर्त ज्यादा जरूरी नहीं है। व्यवस्था में परिवर्तन वाली। हम पक्ष चुनेंगे···यही क्या कम है! व्यवस्था में परिवर्तन की कोशिश बाकी लोग करें। हम उनकी देख-रेख करेंगे। जरूरत होगी तो ललकारेंगे भी और इस बीच गद्दारी करते हुए किसी ने इनाम-विनाम ले लिए तो धर लेंगे।

मैं व्यंग्य को लेकर थोड़ी शास्त्रीय परम्परा निभाना चाहता हूँ। व्यंग्य का एक शास्त्रीय मतलब होता है ऐसी बात जो सीधे न समझी जाय बल्कि अनुगुंजित हो। थप्पड़ तो सीधी बात हुई और थप्पड़ और गाल के सम्पर्क से जो चटाखा हुआ वह व्यंग्य है। वह व्यंग्य ही क्या जिसमें चटाखा न हो, चेहरा थोड़ा आड़ा-तिरछा न हो जाए।

साहित्यकार विचित्र प्राणी होता है। दूसरे को पिटते देखता है तो गद्‌गद हो उठता है। और तब तक आनन्दित होता रहता है जब तक चटाखा उसके गाल से न पैदा हो जाए, दूसरे के वास्ते कहेगा—देखिए मुक्तिबोध ने कैसी दुर्दशा और गरीबी के दिन गुजारे। अपनी बारी आएगी तो कहेगा—यह क्यों जरूरी हो कि लेखक त्याग और तपस्या करे!

व्यंग्य विरूपता और विसंगतियों का उद्‌घाटन करता है। सफल व्यंग्यकार वही है जो विरूपता और विसंगतियों के बारे में पर्याप्त मात्रा में 'चूज़ी' हो। जिस विरूपता से हमारी चूल न बैठे उसे हम धुनेंगे। चूल बैठ जाए तो विरूपता और विसंगति में पर्याप्त बदलाव आ जाता है।

लोग व्यवस्था में परिवर्तन के लिए जोर तो लगाते हैं पर कुछ कर नहीं पाते। वजह यह है कि उन्हें परिवर्तन का शऊर नहीं होता। व्यवस्था में परिवर्तन चूल फिट करने से होता है। बल्कि जरूरी यह होता है कि अपनी चूल तो ठोंक लो और दूसरों की चूल ठुकने में अड़ंगा लगाए रहो। इस तरह अपनी तरफ से विसंगतियाँ दूर हुई दिखती हैं और दूसरे की तरफ वे दो गुनी हो गई होती हैं। व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहते हो तो चूल बैठाना सीखो।

चूल बैठाना भी एक बड़ी कला है। कभी-कभी आप ठोंक-पीट में उम्र बिता दें चारपाई उटंग ही रहेगी। आप किसी सिरे से कोशिश कर लें, न अर्जुनसिंह घर आएँगे न पुरस्कार। आपकी व्यवस्था उस फाइल जैसी हो जाएगी जो नगरपालिका के दफ्तर में जा फँसी हो।

चारपाई की चूल न तो पाए को खोदकर ठीक होती है न पाटी को छीलकर। उसे ठीक करने के लिए उसमें लकड़ी की पतली मेखें अपनी तरफ से ठोंकनी होती हैं। व्यंग्यकार का यही रहस्य है। जहाँ चूल न बैठ पा रही हो वहाँ अपनी मेख ठोंक दीजिए। या तो चूल बैठ जाएगी या पाया दाँत फाड़ देगा। दोनों हालतों में आप ही जीतेंगे।

व्यंग्य और सफल व्यंग्य का यह गुर है और फिलहाल मथुरादास मेख तैयार कर रहे हैं।

इस मेख की बहुत बड़ी उपयोगिता है। बताता हूँ। एक गाँव में एक पाजी आदमी रहता था और वह गाँव जिबलपुर में नहीं था। उसने जीते-जी लोगों को बहुत सताया। किसी को उत्पीड़ित किये बिना न छोड़ता। तब उसका अन्तकाल आया। अन्तिम समय जानकर उसने सारे गाँव वालों को बुलाया और हाथ जोड़कर रोता हुआ इस प्रकार बोला : भाइयो, मैंने जीते-जी आप सबको बहुत सताया है, अब मेरा अन्तकाल है इसलिए मैं पश्चात्ताप करना चाहता हूँ। मेरी विनती है कि जब मैं मर जाऊँ तो मेरी बनाई

यह मेख मेरी छाती में ठोंक देना। इससे मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी कि मैंने दण्ड पाया।

यह कहकर गाँव वालों को मेख सौंपकर वह पाजी आदमी मर गया। चूँकि वह मर ही चुका था इसलिए गाँव वालों ने उसकी इच्छा की पूर्ति के लिए वह मेख उसकी छाती में ठोंक दी।

छाती में ठुकी मेख देखकर पुलिस ने सारे गाँव वालों को यह कहकर गिरफ्तार कर लिया कि उन्होंने मेख ठोंककर उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार मेख तैयार रखने से व्यंग्यकार मरणोपरान्त भी सफलतापूर्वक लोगों को प्रताड़ित करने में सफल हो जाता है।